डॉ. दीपक कुमार गोंड की कविताएँ

क्यों लिखता है कवि कविता

क्यों लिखता है कवि कविता,
स्मित भाव, निर्वाक मनसा,
क्यों लिखता है कवि कविता
मन - लाघव, प्रसंग - साधुवाद करता,
अग्रिहस्थ, अग्रहार शब्द प्रयोग करता,
क्यों लिखता है कवि कविता।
सत्, रज, तम की प्रधानता,
तो कभी, चित्रसेन की समानता,
स्वच्छंद विचारों की दक्षता,
तो कभी संकुचित शब्दों की द्वंदता,
पात्रों का परोक्ष उन्मूलन,
तो कभी, स्वयं की उपयोगिता,
क्यों लिखता है कवि कविता।
कहीं क्षोभ क्षणिक,
कहीं मोक्ष मेखला,
कहीं होता अश्रुपात,
कहीं लगता ठहाका,
कहीं वर्मधारी शब्द प्लवन,
तो कहीं गहराईयां छूता,
क्यों लिखता है कवि कविता।
मन में भावों का सागर उमड़ता,
कवि की चेतना को झकझोर देता,
फिर शुरू होता, भावों के तरंगों में तैरना, कभी
उत्साहित लहरों से ग्रसित,
तो कभी, सांसारिक लहरों का आनंद मनाना,
सहसा ! मन की चेतना, पन्नों पर आकर,
व्यक्त करती कविता,
इसीलिए लिखता है कवि कविता ।।

-----xxxx-----

मछुआरों का विश्वास

समुंदर का किनारा
शांत, अधीर, स्थिरता से
धारायें काटती, मिट्टी गलाती,
तट का एक-एक रव,
नावें हल्की हैं आज,
गिले जाल उलझे हुए,
स्वर्ण आभा पीली पड़कर
ठंडी रेतों में ठिठुरी जा रही ।
असमर्थ थें सभी प्रयोजन,
कठिन श्रम से भी कोई उपलब्धि नहीं,
फेन उगलते समुंदर ने मानो,
असमर्थता पर थू-थू कर दिया हो ।
उम्मीदों से घिरे मछुआरे
देख रहे शांत जल को,
कभी करीब आते लश्कर को,
न कोई बोला,
न कोई मिनका,
पर, मतलब सभी ने जाना
आज के लिए व्यर्थ का परिश्रम,
सहसा ! वेदना भर्त्सना में पूरित हुई,
बच्चों ने समुंदर में पेशाब किया,
बूढ़ों ने प्राचीन पौरूप का हवाला दिया,
स्त्रियों ने पौरूपत्व को आंचल से ढक लिया,
मानो, प्रकाश युक्त नभ ने
असमर्थता की काली खोल ओढ़ ली हो,
समुंदर से नावें अलग थीं,
जो मध्यम गति से कम्पित लहरों पर
हिचकोले ले रही थीं।
खूंटे से बंधी रस्सियां ढीली थीं,
मछुआरे चिंतित, उदास,

कर रहे अपनी असमर्थता का मूल्यांकन,
स्याह नभ में आशा की किरणे
अवचेत पड़ी थीं,
सहसा ! स्वप्न निद्र में शांत
पदचापों की आवाज,
रेतों पर से आने लगी,
कहीं भूखी-प्यासी भीड़
आप्त नेत्रों से आहट लेती,
आने वाले उस पद चापों की,
एक काया कांतिमान
बन सम्मुख खड़ी थी।
जिसके हाथ में दो मछलियां
और कुछ रोटी थी,
उसकी आवाज, मानो
वर्षों से निर्जन पड़े,
प्रस्तरखण्डों में, कंपित स्वर हो,
अधरों पर, निष्कलंक रूधिर कणिकाओं की,
लालिमा छाई हो ।
आंखों में विश्वास भरी कांति,
मानो, संपूर्ण विश्व समाहित हो,
अद्भुत था दृश्य,
केवल विश्वास से,
हां. केवल विश्वास से खिलाता,
देखो ! मै तुम्हारा विश्वास हूं
तुम्हारा, उसका, चराचर विश्व का,
अचानक टूट गई निद्रा,
व्याकुलता से मछुआरे
देखने लगे एक-दूसरे के चेहरे,
कोई नहीं, कोई नहीं,
फिर ये आवाज कहां से आई,
विचित्र था यह स्वप्न,
जो सभी ने देखा एक साथ ।
तभी मानो, समुंदर पर रक्तिम अधरों वाला
बोल उठा,
सन्नाटों को चीरती हवाएं,
शांत समुंदर को जगाने लगीं,
कंपित लहरों पर नावें
अरराकर खूंटिया तोड़ने लगी,
दूर क्षितिज पर किरणें
कालिमा को पोंछने लगी,
असमर्थता के अवसाद गलने लगें,
सहसा ! मछुआरों के अंदर
विश्वास पुनः लगा बोलने,
चिंतित क्यों हो!
देखो मै अनंत काल का विश्वास हूं,
उठो! उठकर कमर कस लो,
विजयी होगे,
जाग गया विश्वास,
छट गए निराशा के बादल,
बह गए असमर्थता के आंसू,
हर्षित हो बोल उठे मछुआरे,
विजयी होंगे ! विजयी होंगे !
यों मानो कहने लगे,
हइया हो! हइया हो!

-----xxxx-----

अंतिम (कविता)परीक्षा

फिर कभी अभी क्यों नही चलते,
वास्तविकता से डर लगता है क्या?
डरना नही मै तो हूँ तुम्हारे साथ ,
देखो,अनंत काल की बांहे फैलाये,
मै सदा सर्वदा हूँ तुम्हारे साथ।
उठो,उठ कर कमर कस लो,
तुमको चलना है साथ।
निर्भीक निराधार होकर चलो,
क्योकि चलना ही तुम्हारी नियति है।

क्या पुनः आना चाहोगे?
हो अगर अंतिम ख्वाईस तुम्हारी,
सोच समझ कर बोलना,
वैकल्पिक परीक्षा होगी तुम्हारी।
प्रश्न भी एक,एक ही विकल्प भी होगा,
केवल व् केवल मोक्ष प्राप्ति।
मृत्यलोक से ब्रह्मलोक,
चलते-चलते ख़त्म हो गया,
अचानक परीक्षा का परिणाम घोषित हो गया।
परिस्थितियाँ अनुकूल हुई,
मै परीक्षा में पास हो गया।
अचानक कंठ रुद्ध हो गया,
साँस रुक गयी; मै निर्जीव हो गया।
देखा अनंत काल का हाथ मेरे हाथ में है।
मैंने उसको देखा,
उसने मुझको देखा,
तभी मेरी नजर नीचे गयी,
मेरा शरीर आग की लपटों से जलाया जा रहा था।
सहसा आलम्बी हाथ ने हरकत की,
हरकत आनन्दायक थी।
वह हँस पड़ा।
मै भी हसते हुए उसके साथ चल दिया,
तभी बादलों का दरवाज़ा आ गया,
न जाने उसके भीतर जाकर,
मेरे साथ क्या क्या हुआ।

-----xxxx-----

मुझे ही अब कुछ करना होगा...

मैं सोचता था, जिन्दगी अच्छी है।
मगर ये तो बेवफा निकली,
मैं अभी भी शिथिल हूँ,
यह सोचकर कि यह कैसी है?
आज अपने कमरे में,
मैं अकेला घुंट गया।
सोचा, यह तो मेरे रोज का रोना था।
लेकिन आज मेरे कमरे में पसरा
अँधेरा, सन्नाटा, उबासी, थकान
कुछ कह रही थीं।
दीवारें भी कोनों-कोनों को पकड़कर फुसफुसा रही थी।
छत से लटका हुआ पंखा भी
शांति से, मेरे पद चापों की
आहट को महसूस कर रहा था।
मैं दम भरता अभी-अभी
तीन मंजिले की सीढियाँ,
जो चढ़ कर आया था।
सांस भारी थी मेरी,
लेकिन उनकी बातें जारी थी।
कहीं हमें सीज तो नहीं कर दिया जायेगा?
हमारे मालिक की तो रोजी-रोटी छीन जाएगी।
दीवारें गवाह बनने को तैयार नहीं थी।
तभी पंखें ने अपनी भूमिका स्पष्ट की,
सारा भार-दोष तो मुझपर ही आएगा।
तभी अँधेरे ने, सन्नाटें से कहा
सब डरपोक हैं।
इन्हें नहीं पता कि अँधेरे में,
कुछ भी दिखाई नहीं देता,
तो किस बात का
शिनाख्त, साक्षी, गवाह बनना,
सन्नाटे ने बोला, मुझसे कोई मतलब नहीं,
जो होगा देख लेंगे।
इतने बड़े महानगर में,
हम अकेले, थोड़े ही हैं।
कभी देखा है,

किसी मामले में, हमसे कभी कोई पूछताछ हुई है।
जैसे भगवान लेकिन लगाते हैं।
वैसे हम भी हैं।
खामखाँ आदमी जुमलेबाजी करता है कि
दीवारों के भी कान होते हैं।
कान तो आदमी के पास होता है।
जो इस वक्त हमारी बातों को सुन रहा है।
उसकी आज यह अवस्था, केवल सुनने से हुई है।
अच्छा है, हम सुनते नहीं हैं।
हम केवल देखते हैं...
सभी आने वाले उस क्षण से परिचित थे।
इसलिए सतर्कता पर उनकी बहस जारी थी।
मुझे लगा इनकी बातें खत्म न होगी
मुझे ही अब कुछ करना होगा...

-----xxxx-----

डॉ. दीपक कुमार गोंड
सहायक आचार्य, कला एवं मानविकी (भाषा) विभाग, क्राइस्ट एकेडेमी, बेंगलूरु
मो.8368598831, इमेल-deepakkumar.g@caias.in